



विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/निःशुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujain@gmail.com

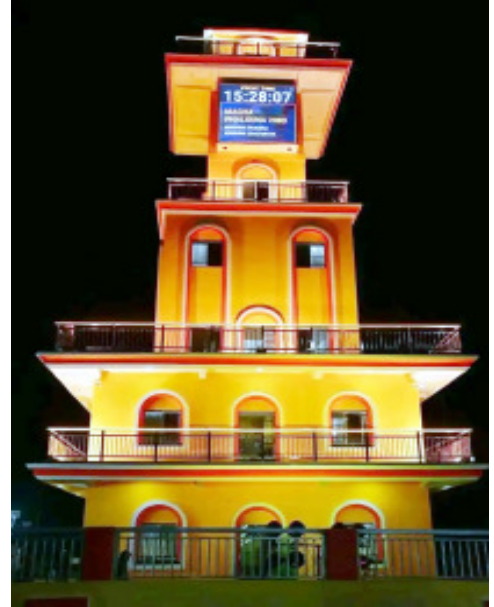
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujain.com

कालगणना के केंद्र में वैदिक घड़ी की स्थापना

राजेश्वर त्रिवेदी

प्राचीन काल में मनुष्य ने सूर्य की विभिन्न अवस्थाओं के आधार प्रातः, दोपहर, संध्या एवं रात्रि की कल्पना की। ये समय स्थूल रूप से प्रत्यक्ष हैं। तत्पश्चात् घटी पल की कल्पना की होगी। इसी प्रकार उसने सूर्य की कक्षागतियों से पक्षों, महीनों, ऋतुओं तथा वर्षों की कल्पना की होगी। समय को सूक्ष्म रूप से नापने के लिए पहले शंकुयंत्र तथा धूपघड़ियों का प्रयोग हुआ। रात्रि के समय का ज्ञान नक्षत्रों से किया जाता था। तत्पश्चात् पानी तथा बालू के घटीयंत्र बनाए गए। ये भारत में प्राचीन काल से प्रचलित थे। पानी का घटीयंत्र बनाने के लिए किसी पात्र में छोटा सा छेद कर दिया जाता था, जिससे पात्र एक घंटी में पानी में डूब जाता था। उसके बाहरी भाग पर पल अंकित कर दिए जाते थे। इसलिए पलों को पानीय पल भी कहते हैं। बालू का घटीयंत्र भी पानी के घटीयंत्र सरीखा था, जिसमें छिद्र से बालू के गिरने से समय ज्ञात होता था। किंतु ये सभी घटीयंत्र सूक्ष्म न थे तथा इनमें व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी थीं। विज्ञान के प्रादुर्भाव के साथ लोलक घड़ियाँ तथा तत्पश्चात् नई घड़ियाँ, जिनका हम आज प्रयोग करते हैं। समय मापने के लिए वृक्षों की छाया को नापने चलन से लेकर कोणार्क के सूर्य मन्दिर के चक्र तक अनेक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता रहा है। संस्कृत के बहुत से गणित एवं ज्योतिष ग्रन्थों का आरम्भ नापतौल की ईकाइयों के परिचय से ही हुआ है। उदाहरण के लिए गणितसारसंग्रह का संज्ञाप्रकरण विभिन्न इकाइयों की प्रणाली के परिचय से शुरू होता है। खगोलविदों एवं गणितज्ञों ने मापन के लिए आवश्यक यंत्रों का भी विकास किया था जिनका परिचय यंत्रराज, यंत्रशिरोमणि, यंत्रार्णव इत्यादि ग्रन्थों में दिया गया है।



कालजयी उज्जयिनी की स्थापना सृष्टि के आरंभ से ही मान्य की जाती रही है। दुनियाभर में उज्जयिनी से निर्धारित और प्रसारित कालगणना नियामक रही है। भारतीय खगोल सिद्धांत और ब्रह्माण्ड के ग्रह नक्षत्रों की गति पर आधारित भारतीय काल गणना में समय के न्यूनतम अंश का भी समावेश किया जाता है। इसकी गणना में परमाणु से लेकर कल्प तक का विचार है। मुहूर्त, घटी, पल, कास्ता, प्रहर, दिन-रात, पक्ष, अयन, सम्वत्सर, दिव्यवर्ष, मन्वन्तर, युग, कल्प, ब्रह्मा मुख्य आधार हैं। हमारे द्रष्टा ऋषियों ने काल की चक्रीय अवधारणा को प्रतिपादित किया है जिसमें सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग की व्यवस्था निरंतर है और यह चक्र शाश्वत रूप से आते-जाते हैं तथा इनकी आवृत्ति-पुनरावृत्ति होती रहती है। विक्रमोत्सव अंतर्गत प्रधानमंत्री ने गत 29 फरवरी को उज्जैन में स्थापित विक्रमादित्य वैदिक घड़ी का वर्चुअल लोकार्पण किया। महाकाल की वजह से पूरे देश में उज्जैन की अपनी अलग पहचान है। सम्राट विक्रमादित्य की नगरी का अतीत बहुत ही उज्ज्वल रहा है। दुनिया को समय बताने के लिए उज्जैन में देश की पहली वैदिक घड़ी की स्थापना की गई है। यह दुनिया की पहली ऐसी

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

कालगणना के केन्द्र में
वैदिक घड़ी की स्थापना
राजेश्वर त्रिवेदी

पृष्ठ क्र. 3-4

प्राच्य भारत के महत्वपूर्ण
समुदाय
मनीष रत्नापारखी

पृष्ठ क्र. 5-6

मुद्राओं पर अंकित
राजवंशों के साक्ष्य
विजय परिहार

पृष्ठ क्र. 7

दक्षिण भारत की संस्कृति
और चोल शासक
प्रदीप जैन

पृष्ठ क्र. 8

वैज्ञानिक चिंतन की
प्राचीन परंपरा
'आर्ष भारत'
मिथिलेश यादव



डिजिटल वैदिक घड़ी है जो इंडियन स्टैंडर्ड टाइम और ग्रीनविच मीन टाइम तो बताने के साथ ही, पंचांग और तीस मुहूर्त की भी जानकारी देती है। सूर्योदय-सूर्यास्त से लेकर सूर्य और चंद्र ग्रहण कब होगा? यह भी बताएगी। उज्जैन स्थित प्राचीन वेधशालाएँ जंतर-मंतर पर स्थापित इस वैदिक घड़ी का एप भी लॉन्च किया जायेगा ताकि आमजन इसे मोबाइल पर इंस्टॉल कर इसका उपयोग कर सकेंगे। महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ के निदेशक श्रीराम तिवारी कहते हैं कि उज्जैन को काल गणना (टाइम कैलकुलेशन) का केंद्र माना जाता रहा है। उज्जैन से कर्क रेखा (ट्रॉपिक ऑफ कैन्सर) गुजरी है। प्रदेश सरकार उज्जैन को टाइम कैलकुलेशन का सेंटर बनाना चाहती हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि तीन सौ साल पहले तक उज्जैन से ही दुनियाभर का स्टैंडर्ड टाइम निर्धारित किया जाता था। समय का पता लगाने के लिए एक मशीन उज्जैन में मौजूद है। प्राचीन संदर्भों की बात करें तो समय के बारे में सनातन दृष्टिकोण को वैदिक समय प्रणाली के रूप में जाना जा सकता है। काल (समय) को अतीत से भविष्य की ओर तेजी से बढ़ते तीर की तरह रैखिक या एकल-दिशात्मक गति नहीं माना जाता है।

अंग्रेजों के शासन में हमारे देश के 2 टाइम जोन थे—कोलकाता और दूसरा मुंबई। बाद में आईएसटी (इंडियन स्टैंडर्ड टाइम) बना, यानी एक देश का एक ही मानक समय। हमारा आईएसटी 5.30 है। मतलब ग्रीनविच मीन टाइम से 5.30 घंटे आगे। आईएसटी एक ऐसी यूनिट है, जिससे दुनिया के समय का आकलन लगाया जाता है। ग्रीनविच इंग्लैंड का एक ग्रामीण कस्बा है जहाँ आईएसटी को 1884 में मान्यता दी गई थी। 1972 तक यह 'अंतर्राष्ट्रीय सिविल टाइम' का मानक बन गया। यदि दुनिया में कोई-सा वैज्ञानिक कैलेंडर या समय मापन-निर्धारण की पद्धति है तो वह है भारत के प्राचीन वैदिक ऋषियों की पद्धति। इसी पद्धति को ईरानी और यूनानियों ने अपनाया और इसे ही बाद में अरब और मिस्र के वासियों ने अपनाया। किंतु कालांतर में अन्य देशों में बदलते धर्म और संस्कृतियों के प्रचलन ने इसके स्वरूप में परिवर्तन कर दिया गया। उस काल में दुनियाभर के कैलेंडर में मार्च का महीना प्रथम महीना होता था, लेकिन उन सभी कैलेंडरों को हटाकर आजकल अंग्रेजी कैलेंडर प्रचलन में है। अंग्रेजों ने लगभग पूरी दुनिया पर राज किया। ऐसे में उन्होंने अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति सहित ईसा के कैलेंडर को भी पूरी दुनिया पर लाद दिया। वैदिक ऋषियों ने इस तरह का कैलेंडर या पंचांग बनाया, जो पूर्णतः वैज्ञानिक हो। उससे धरती और ब्रह्मांड का समय निर्धारण किया जा सकता हो।

हिंदू विरासत में समय का विचार ही काफी उन्नत था। हिंदू अवधारणा लय या सार्वभौमिक व्यवस्था की बात करती है जो समय के रूप में प्रकट होती है। समय की लय परमाणु की तेज टिक-टिक से लेकर संपूर्ण ब्रह्मांड के विस्तार तक होती है—पृथ्वी की भूवैज्ञानिक प्रक्रिया के न भीतर प्रकट

होने वाला समय, मौसम परिवर्तन आदि। भारतीय विरासत में काल (समय) स्वयं भगवान शिव से जुड़ा हुआ है। शिव को महाकाल 'महान् समय' कहा जाता है और देवी काली समय की ऊर्जा का प्रतीक हैं। उज्जैन में खगोल विज्ञान का विकास हुआ और यह खगोलीय अनुसंधान का केंद्र बन गया। प्रसिद्ध खगोलशास्त्री और बहुश्रुत वराहमिहिर की सब से उल्लेखनीय रचनाएँ बृहत्संहिता और पंच सिद्धांतिका थीं। बृहत्संहिता एक विश्वकोश है, जिसमें ग्रहों की गति, ज्योतिष, समय-पालन, ग्रहण से लेकर वास्तुकला और कृषि तक जैसे विषय शामिल हैं। पंच सिद्धांतिका का एक गणितीय खगोल विज्ञान ग्रंथ है, जो पांच प्राचीन ग्रंथों सूर्य सिद्धांत, रोमका सिद्धांत, पौलिस सिद्धांत, वशिष्ठ सिद्धांत और पितामह सिद्धांत का सारांश है। उज्जैन में स्थापित इस वैदिक घड़ी को लखनऊ की संस्था 'आरोहणम्' के आरोह श्रीवास्तव ने बनाया है। वैदिक घड़ी इंटरनेट और जीपीएस से जुड़ी होने के कारण दुनिया में कहीं भी इसका उपयोग किया जा सकेगा। घड़ी को मोबाइल और टीवी पर भी सेट किया जा सकेगा।

वैदिक घड़ी में सूर्योदय से अगले दिन सूर्योदय तक समय को तीस भागों में वेदों के अनुसार विभाजित किया गया है। जिस प्रकार आज समय जानने के लिए घंटे-मिनट-सेकेंड का प्रयोग होता है उसी प्रकार वैदिक घड़ी में मुहूर्त-काल-कास्था का प्रयोग होता है। प्रत्येक दिन में तीस मुहूर्त, एक मुहूर्त में तीस काल और एक काल में तीस कास्था होते हैं। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार प्रत्येक दिन में चौबीस घंटे, एक घंटे में साठ मिनट और एक मिनट में साठ सेकेंड। हमारी वैदिक घड़ी का एक मुहूर्त बराबर वर्तमान घड़ी अनुसार 48 मिनट, एक काल बराबर 96 सेकेंड और एक कास्था बराबर 1.6 सेकेंड है। आज की घड़ी अनुसार सूर्य उदय का समय प्रति दिन बदल जाता है, जबकि सूर्य स्थिर है, हमारी पृथ्वी ही उसकी परिक्रमा करती है तो हमे सूर्य अनुसार अपनी कालगणना करनी चाहिए जो की ऋग्वेद में वर्णित है। जंतर-मंतर भी काल की इसी गणना पर आधारित है। आज के समयनुसार बहुत से देश और शहरों को सूर्य की रौशनी का पूरा फायदा नहीं मिल पता है। हमारे वैदिक समय अनुसार इस समस्या का स्थाई समाधान मिल जायेगा।

विक्रमादित्य वैदिक घड़ी

वैदिक काल गणना परम्परा पर आधारित।

सूर्योदय से सूर्यास्त-सूर्योदय से मध्यम 30 घड़ियों में समय विभाजन।

वैदिक घड़ी में मुहूर्त-काल-कास्था का प्रयोग होगा। प्रत्येक दिन में 30 मुहूर्त एक मुहूर्त में 30 काल और एक काल में 30 कास्था होते हैं।

जैसे कि 24 घण्टे, 60 मिनट, 60 सैकेंड जबकि एक काल में 96 सैकेंड और 1 कास्था बराबर 1.6 सैकेंड।

प्राच्य भारत के महत्वपूर्ण समुदाय

मनीष रत्नपारखी

प्राचीन भारत कई जनजातियों और समुदायों का एक केंद्र स्थल रहा है। इन जनजातियों में भारतीय उपमहाद्वीप की विशालता और विविधता के कारण 'सबसे मजबूत' जनजातियों की पहचान करना चुनौतीपूर्ण रहा है। प्राचीन भारत के विभिन्न क्षेत्रों और कालखंडों में अनेक जनजातियों और राजवंशों का उत्थान और पतन देखा गया। भारत के ऐतिहासिक मूल्यों को परिभाषित करने वाले दो ग्रंथ हैं— महाभारत और रामायण। इनमें जनजातीय समुदाय के ऐतिहासिक पात्र अपनी भूमिका, प्रभाव और व्यक्तित्व के कारण विशिष्ट रूप में उभरते हैं। वैदिक और महाभारत काल के ऐसे अनेक लिखित और साहित्यिक संदर्भ उपलब्ध हैं जो उस काल की अनेक जनजातीय के विषय में विस्तार से चर्चा करते हैं। ऋग्वेद में भी जनजातियों का उल्लेख मिलता है। जिसमें उन्हें आदिम जातियाँ कहा गया है। कुछ ऐसे भी विवरण प्राप्त होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि वे जनजातियाँ कितनी प्रगतिशील थी। इन्हीं जनजातियों और समूहों ने प्राचीन भारतीय इतिहास के विभिन्न प्रसंगों और घटनाओं में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करवाई थी। संस्कृत, पाली, प्राकृत, वेद, उपनिषद् व पुराण जैसे ग्रंथों में इन जनजातियों के उल्लेख मिलते हैं। प्राचीन भारत का इतिहास इन जनजातियों की चर्चा के बगैर पूरा नहीं हो सकता है। भारतीय इतिहास उन जनजातीय समुदायों के उदाहरणों से भरा है जिन्होंने समाज पर अपना प्रभाव डाला और संकल्प, साहस, और ज्ञान के उदाहरणों के रूप में उभरे और इस तरह एक विविधवर्णी संस्कृति के प्रतीक बने।

प्राचीन भारत में अनेक शक्तिशाली जनजातियाँ मौजूद थीं। इन्हीं में कम्बोज एक प्रमुख जनजाति थी। इसको एक प्रसिद्ध आर्य जनजाति माना जाता है, जिसके वंशज आज भी भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी इलाके में मिलते हैं। अनेक अध्ययनों लिखित उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि कम्बोज प्रारंभिक वैदिक जनजातियों में से एक थी। इसका सबसे पहला उल्लेख सामवेद के वंश ब्राह्मण में दी गई प्राचीन वैदिक

शिक्षकों की सूची में प्राप्त होता है। इन शिक्षकों में से एक का उल्लेख "कम्बोज औपमन्यव" यानी उपमन्यु के पुत्र कम्बोज के रूप में मिलता है। ऋग्वेद के खंड एक में उपमन्यु नामक एक ऋषि का उल्लेख आता है। वैदिक युगीन ऋषि आनंदजा ने सरकाराक्ष के पुत्र साम्ब और उपमन्यु के पुत्र कम्बोज से वैदिक



शिक्षा प्राप्त की थी। वे वैदिक शिक्षा में विशेष श्रेष्ठता के लिए प्रतिष्ठित थे। इससे पता चलता है कि प्रारंभिक वैदिक काल में कम्बोज वैदिक भारतीय लोग रहे होंगे, न कि विदेशी जैसा कि कई विद्वानों ने कहा है। माना जाता है कि ऋग्वैदिक काल में उन्हें वैदिक आर्यों में सम्मिलित कर लिया गया था। कम्बोज का अगला महत्वपूर्ण उल्लेख महर्षि यास्क ने अपने निरुक्त (इसका अर्थ स्पष्टवादी होना है) ग्रंथ में किया है। जिस प्रकार गांधार के उत्कृष्ट ऊन का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है, उसी प्रकार कम्बोज के कंबलों का उल्लेख यास्क के निरुक्त में हुआ है। वास्तव में यास्क ने 'कम्बोज' शब्द की व्युत्पत्ति ही

'सुंदर कंबलों का उपभोग करनेवाले' लोगों के रूप में की है।

उत्तर पश्चिम में ऊँचे पहाड़ी इलाकों में रहने वाले व्यक्तियों के लिए कंबल एक आरामदायक, सुखदायक, ऊष्मा प्रदायक वस्तु थी। कम्बोज जनजाति द्वारा भारी मात्रा में कंबलों का उत्पादन किया जाता था। इसका उल्लेख महाभारत में आया है जो हमें बताता है कि राजसूय यज्ञ के अवसर पर कम्बोज के राजा ने युधिष्ठिर को बहुत अच्छे किस्म के ऊन से बने कंबल तथा जानवरों के फर से बने कंबल भेंट किए थे। पाणिनि ने, जो स्वयं कम्बोज के सहवर्ती प्रदेश के निवासी थे 'कम्बोजाल्लुक' सूत्र से अष्टाध्यायी में इस जनपद के बारे में अपनी जानकारी प्रकट की है। पतंजलि ने भी महाभाष्य में कम्बोज का उल्लेख किया है। अधिकांश विद्वान मानते हैं कि कम्बोज उत्तरापथ के गांधार के निकट स्थित प्राचीन भारतीय जनपद था जो (वर्तमान अफगानिस्तान) हिंदूकुश पहाड़ों के पास स्थित था। आधुनिक मान्यता के अनुसार कश्मीर के राजौरी से तजाकिस्तान तक का हिस्सा कम्बोज था। कम्बोज का विस्तार कश्मीर से हिन्दूकुश तक था। इसके दो प्रमुख नगर

थे राजपुर और नंदीपुर। राजपुर को आजकल राजौरी कहा जाता है। कालिदासकृत रघुवंश में कम्बोज की स्थिति और इतिहास के बारे में जानकारी मिलती है। प्राच्य इतिहासकार राइस डेविडस् के अनुसार कम्बोजों का राज्य भारत के दूरस्थ उत्तर पश्चिम में था तथा इसकी राजधानी द्वारका थी। महाभारत के एक अंश से हमें पता चलता है कि राजापुरा नामक स्थान कम्बोजों की राजधानी थी। कम्बोज जनजाति का महाभारत की क्षत्रिय जनजातियों में प्रमुख स्थान रहा है। वाल्मीकि रामायण के आदि कांड में बताया है कि कम्बोजों का सृजन ऋषि वशिष्ठ के आग्रह से दिव्य गाय से हुआ है। इसके साथ ही कम्बोज का त जनपदों के साथ वर्णन है। यह जनजाति दुर्योधन के सहयोगी और मित्र थी तथा अपनी वीरता, साहस और विशेष रूप से अपने राजा सुदक्षिणा की शक्ति के कारण इन लोगों ने महाभारत के युद्ध में कौरवों के पक्ष में अमूल्य सेवाएँ प्रदान की। सुदक्षिणा युद्ध क्षेत्र में महारथ अथवा महान् नायक था। महाभारत में कम्बोज देश के कमठ और सुदक्षिण नामक राजाओं के नामों के उल्लेख मिलते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि चौथी शताब्दी ई.पू. में कम्बोज में गणराज्य की स्थापना भी की गई थी। अर्थशास्त्र में कम्बोज जनजाति को कृषि और शस्त्रों से जीविका अर्जन करनेवाले संघ की संज्ञा दी है और इनका मूल धर्म 'शैव' है। कम्बोज के छोड़े भारत के इतिहास में हरेक काल में बहुत प्रसिद्ध रहे। महाभारत में कम्बोज के अति उत्तम श्रेणी के घोड़ों के संदर्भ से भरा हुआ है। महाभारत के समापर्व में हम पढ़ते हैं कि कम्बोज के राजा ने युधिष्ठिर को रंग बदलने वाले तीन सौ उत्तम किस्म के घोड़े भेंट किये थे। कुरुक्षेत्र के महायुद्ध में कम्बोज के तेज दौड़ने वाले तथा शक्तिशाली घोड़े अत्यधिक उपयोगी थे। कालांतर में कम्बोज लोग वैदिक धर्म को छोड़कर तरह-तरह के देवी और देवताओं को मानने लगे थे, लेकिन वे मूलतः शैव थे। वे वेद विरुद्ध कर्म करने लगे थे इसलिए उनको असुर और अनार्य मान लिया गया था। मनुसंहिता के नवें अध्याय में इस बात का उल्लेख है कि कम्बोज तथा अन्य क्षत्रिय जनजातियों को धीरे-धीरे उनके द्वारा धार्मिक संस्कारों को ना करने के कारण पदावनत कर दिया गया। महाभारत शांति पर्व के अनुसार कम्बोजों को उत्तर भारत के बर्बर लोगों में गिना जाने लगा। कम्बोज ब्राह्मण समाज से अपना संपर्क खो रहे थे। संभवतः यह इसलिए हो रहा था कि उनके समाज में अनेक जंगली बर्बर लोग जुड़ गए थे। अनेक जातक इस बात को उल्लेखित करती है कि कम्बोज उत्तर पश्चिम भारत की जनजाति थी। ऐसा माना जाता है कि यह जनजाति अपने मौलिक आर्य रीति रिवाजों को छोड़कर बर्बर बन गयी थी। महाभारत के वर्णन में कम्बोज देश के अनार्य रीति रिवाजों का आभास मिलता है। इस प्राचीन वैदिक जनजाति का अपने शौर्य और पराक्रम से भारतीय प्राचीन वैदिक इतिहास में अपना विशेष स्थान कायम किया है। कम्बोज जनजाति के आर्य से अनार्य बनने के इस पूरे उपक्रम में उनका शौर्य सबसे अलग परिलक्षित होता है। कम्बोज भारतीय क्षत्रिय योद्धा

जनजातियों में अपना विशेष स्थान रखते हैं। आरंभिक वैदिक आर्य राज्यों की अपेक्षा जनजातियों में संगठित थे। ये जनजातियाँ कर्म आधारित भी थी। जिनमें कृषि कर्म से लगाकर युद्धों में शामिल होने वाली जनजातियाँ प्रमुख रूप से थी। गांधार प्राचीन शक्तिशाली जनजातियों में एक प्रमुख जनजाति थी और उनका राज्य सिंधु से व्यास नदी तक फैला हुआ था। वैदिक काल की यह क्षत्रिय जनजाति योद्धा और शासक जनजाति थी। गांधार नाम अन्य वेदों, महाकाव्यों और पुराणों के साथ-साथ बौद्ध साहित्य में भी मिलता है। गांधार शब्द का उल्लेख ऋग्वेद, उत्तर-रामायण और महाभारत में मिलता है। इस शब्द का अर्थ है गंध (सुगंध), अर्थात् सुगंधों की भूमि। ऐसा कहा जाता है कि गांधार भगवान शिव के नामों में से एक है, जैसा कि सहस्रनाम (हजार नाम) में वर्णित है, जिसे भगवान कृष्ण ने महाभारत में ऋषि उपमन्यु से प्राप्त किया था। यही बात युधिष्ठिर, भीष्म और कुरु वंश के अन्य सदस्यों को सुनाई गई। ऐसी भी प्रबल मान्यता है कि शिव पूजा जनजाति गांधार के पहले निवासी थे। यह अनुमान लगाया जाता है कि गंधर्व नामक एक अन्य अति मानव जनजाति मूल रूप से गांधार साम्राज्य की निवासी थी। गंधर्वों का वर्णन सबसे पहले वेदों में लौकिक प्राणियों के रूप में किया गया है। कालांतर में उन्हें एक जाति (समुदाय) के रूप में वर्णित किया गया है। जैसा कि संहिताओं, पुराणों और बाद के साहित्य में कहा गया है कि गंधर्वों ने अपना नाम एक भौगोलिक क्षेत्र गांधार से लिया था। उन्होंने संगीत कला को महान् ऊँचाई तक पहुँचाया। उस समय उपमहाद्वीप का यह क्षेत्र पूर्व और भूमध्य सागर की संगीत परंपराओं के महान् संगम स्थल बन गया था। गंधर्व, नाम अनेक सदियों से संगीत के क्षेत्र में उपयोग किया जाता रहा है। वायु पुराण में भारतवर्ष के नौ प्रभागों में से एक को गंधर्व कहा गया है। गांधार भारत की उत्तर पश्चिमी सीमाओं पर कम्बोज, माद्र तथा वैसे ही अन्य सामान जनजातियों का पड़ोसी राज्य था। ऋग्वेद में गंधार के निवासियों को गंधारी कहा गया है तथा उनकी भेड़ों के ऊन को सराहा गया है। अथर्ववेद में इस जनजाति का मूजवंतों के साथ उल्लेख है। 'मूजवंत' पश्चिमी हिमालय में स्थित एक क्षेत्र था। अथर्ववेद में गंधारियों की गणना अवमानित जातियों में की गई है किंतु परवर्ती काल में गंधारवासियों के प्रति तात्कालिक अन्य समुदायों का दृष्टिकोण बदल गया और गांधार को बड़े विद्वानों ने अपनी कर्म भूमि और तक्षशिला को गांधार की विश्व विख्यात राजधानी बनाया। मत्स्य और वायु पुराण में गंधार जनजाति के नरेशों को द्रुहु का वंशज बताया गया है। ययाति के पाँच पुत्रों में से एक द्रुहु था। ययाति के पाँच पुत्र थे इन्हें वेदों में पंचनंद कहा गया है। इन्हीं पाँचों पुत्रों ने अपने-अपने नाम से राजवंशों की स्थापना की। यदु से यादव, तुर्वसु से यवन, द्रुहु से भोज, अनु से मलेच्छ और पुरु से पौरव वंश की स्थापना हुए। ऋषि वेद व्यास द्वारा रचित ग्रंथ महाभारत में गांधार साम्राज्य का उल्लेख है।

मुद्राओं पर अंकित राजवंशों के साक्ष्य

विजय परिहार

संवत् प्रवर्तक राजा विक्रमादित्य भारतीय परम्परा में अद्वितीय शासक रहे हैं। 2070 वर्ष पूर्व उन्होंने जिस सम्वत् का प्रवर्तन किया था। वह कृत, मालव अथवा विक्रम या विक्रमादित्य के नाम से समय-समय पर प्रचलित रहा। आज भी वह विक्रम सम्वत् के नाम से विख्यात है। भारतीय तथा विदेशी विभिन्न भाषाओं में प्राचीन काल से ही विक्रमादित्य की वीरता, दानप्रेम, न्यायशील, पराक्रम, लोकप्रियता तथा आदर्श चक्रवर्ती शासक के रूप में चर्चित रहे हैं। उनकी लोकप्रिय कहानियाँ पुराणों, साहित्य तथा लोक साहित्य में प्रचुर रूप से पायी जाती हैं। विक्रम सम्वत् के अनुसार दिनचर्या पूरे उत्तर भारत में प्रचलित है। तात्पर्य यह कि भारत

के सर्वाधिक लोकप्रिय राजा विक्रमादित्य हैं। नर्मदा तट से प्राप्त उज्जयिनी के सिक्के पर बेलगाम तेजी से भागता घोड़ा अंकित है। अश्वमेघ अथवा राजसूर्य यज्ञ के लिए छोड़ा गया अश्व बेलगाम होता था, जिससे वह अपनी इच्छानुसार दिशा

दिशा में देशों-प्रदेशों की यात्रा कर सके। कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र में भी अश्वमेघ के लिए शुंग राजा पुष्यमित्र द्वारा छोड़ा गया अश्व बेलगाम यात्रा कर रहा था। राजा विक्रमादित्य के सिक्के पर अंकित घोड़ा भी बेरोकटोक तीव्र गति से भागता अंकित है। घोड़े के पीठ पर दंडाकार है। वह जयध्वज है या पंख यह स्पष्ट नहीं है। जय ध्वज हो तो विक्रमादित्य की जय यात्रा का प्रतीक है। यदि वह पंख है तो वह उड़ता घोड़ा है। उड़ता घोड़ा विक्रमादित्य की तीव्र गति से विजय यात्रा का प्रतीक है। राजा भोज की श्रृंगारमंजरी कथा में विक्रमादित्य के उड़ते घोड़े का वर्णन पाया जाता है। श्री विक्रम, राजा विक्रम आदि सिक्कों पर अंकित हैं। एक सिक्के पर उज्जयिनी और विक्रम अंकित है। इससे सिद्ध होता है कि यह विक्रम उज्जैन का ही था। अक्षर ईस्वी पूर्व प्रथम शती की ब्राह्मी लिपि में है। सिक्कों पर उज्जयिनी चिह्न उन्हें प्राचीन सिद्ध करते हैं। उज्जयिनी चिह्न वेदी में कल्पवृक्ष राज्य की निरन्तर सुख समृद्धि बताते हैं। दण्डधारी शिव राजा के शैव सिद्ध करते हैं। उज्जयिनी चिह्न पर म का अंकन महादेव और मालव दोनों का संकेत करते हैं। सूर्य ध्वज राजा को सूर्य-सा प्रतापी और उज्जैन को सौर कालगणना का केन्द्र भी सिद्ध करते हैं। इस प्रकार नर्मदा तट से प्राप्त सिक्कों से विक्रमादित्य संबंधी कई तथ्य प्रकट होते हैं, जिनकी इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण भूमिका होगी। दृश्य स्पष्ट दिखाई दे रहा था जीनिक दिखाई दे रहे हैं।



यह विक्रमादित्य का एक पूर्णप्रमा नर्मदा के तटवर्ती क्षेत्र भीमबेटका में प्राप्त हुआ है। नर्मदा के तटवर्ती क्षेत्र से 1936-38 में हुए उत्खनन से प्राप्त पात्र पर मूलदेव जी अक्षर में लिखा है। मूलदेव विक्रमादित्य का सभासद था। इसी क्षेत्र से मूलदेव नामांकित मूल सीज प्राप्त हुई है, जिसकी लिपि ईस्वी पूर्व प्रथम शती की ब्राह्मी, भाषा-प्राकृत है। मूलदेव का एक महत्वपूर्ण प्रमाण सन् 1975 से 1977 में हुए अयोध्या के पुरा उत्खनन से प्राप्त हुआ है। इस उत्खनन से सिक्के प्राप्त हुए हैं। जिसमें मूलदेवस नामांकित है। सिक्के के पुरोभाग पर दक्षिण मुख्य वृषण के साथ वहीं ध्वजदण्ड और कही तीन चाध का चौत्य है। पीछे वैदिक वृक्ष

और उज्जयिनी सिंह बना हुआ है। मूलदेव का एक और प्रमाण साँची के स्तूप में सूचित है। विपुला (मूलदेव की गणिका प्रेमिका) उज्जयिनी की विपुला लेख। एक और अचला (मूलदेव की गणिका प्रेमिका) नन्दिनगर की अचला सिसुणी इसका

साँची स्तूप पर दो बार लेख है। मूलदेव का एक प्रमाण हमें अंचलेश्वर के स्तम्भ पर अंकित लेख में प्राप्त होता है। जिसमें लिखा है 'भगवता आपरा तापुसेना ससपुतस सनायस' अथवा पुरीन या तापुरोन शशपुत्र ने भार्या सहित यह स्तम्भ बनवाया। शश मूलदेव का मित्र था। मूलदेव विक्रमादित्य का सभासद था। अतः स्तम्भ लेख विक्रमादित्यकालीन है। यह स्पष्ट होता है कि भारत का न्याय प्रिय राजा विक्रमादित्य चक्रवर्ती सम्राट था। उसके पुरा प्रमाण भारत भर में प्राप्त होते हैं। नर्मदा नदी के तटवर्ती क्षेत्र से प्राप्त साक्ष्य विक्रमादित्य के इतिहास निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् स्थानिक, जानपदिक एवं अनुवांशिक राज्य स्थापित किये। इन नवोत्थित राज्यों ने अपने सिक्के, मुख्यतः ताँबे के चलाये थे। उनके चाँदी के भी सिक्के बहुत ही कम हैं। आहत-मुद्राओं की पद्धति पर बने चौकोर अथवा आयताकार डेढ़ इंच लम्बे और पौन इंच चौड़े ताँबे के सिक्के बिहार में अनेक स्थलों से मिले हैं। उन पर एक ओर पाँच और दूसरी ओर चार लांछन हैं। पाँच चिह्नों वाला समूह मौर्यकालीन चाँदी की आहत मुद्राओं के लांछन-समूह से काफी समानता रखता है। किन्तु बनावट में उनसे भिन्न है। इन सिक्कों को ई.पू. 184 में मौर्य-सिंहासन अपहृत करने वाले पुष्यमित्र शुंग ने प्रचलित किया होगा ऐसी धारणा है। पुष्यमित्र शुंग के उत्तराधिकारी जब मगध त्यागकर विदिशा चले गए तो वहाँ भी उन्होंने अपनी आहत मुद्राओं की

तकनीक में बने सिक्के चलाये। इन सिक्कों पर एक लांछन का स्थान आलेख ने लिया है। उनमें नारायण मिश्र, भूमिदत्त, हस्तिदेव, भानुमित्र, दामभद्र, भगिला, कविभूति नाम हैं। ये सिक्के सम्भवतः परवर्ती शुंगशासकों और उनके उत्तराधिकारी कण्वों के हैं। सिक्के बनाने के लिए आहत निर्माण-प्रणाली के स्थान नवीन प्रणालियाँ अपनायी गयी तथापि लांछनों का प्रयोग पूर्ववत् बना रहा। अधिकार की अभिव्यक्ति के लिए लेखों का एक नया तत्व भी इनके साथ जुट गया। अर्थात् इन सिक्कों पर लेखों का प्रयोग होने लगा।

इस काल के कुछ अभिलेखरहित सिक्के उत्तर-पश्चिम में गांधार से, गंगा काँटे में कौशाम्बी से और मध्य भारत में एरण और उज्जयिनी से मिले हैं। उज्जयिनी के सिक्के असंख्य भांतों के हैं। अधिकांश पर एक ओर उज्जयिनी चिह्न कहा जाने वाला प्रतीक है। कुछ सिक्कों पर उज्जयिनी चिह्न के स्थान पर मेढक देखने में आता है। अभिलेखयुक्त सिक्के अपने लेखों के अनुसार तीन प्रकार के हैं, नागर, जनपदीय और वैयक्तिक। नागर सिक्कों पर नगर-नाम अंकित है, कदाचित् इन्हें नगर-राज्यों ने प्रचलित किया था। सिक्कों से ज्ञात इस काल के अन्य नगर-राज्य थे वाराणसी, श्रावस्ती और कौशाम्बी, पूर्वी राजस्थान में उद्देहिक और सुदवास। मध्यभारत में उज्जयिनी, एरकिण्य, विदिशा, महिष्मती, कुरर, भगिला और त्रिपुरी, दक्षिण में नगर। ये सभी नगर-राज्य अल्प जीवी थे। इनमें से अधिकांश के पीछे चलकर राजतंत्र का रूप धारण कर लिया। इन नगर-राज्यों में विशेषतः राजस्थान के सिक्कों पर स्थान और शासक दोनों के नाम मिलते हैं। इन सिक्कों का महत्व इस बात में है कि इस तथ्य को उद्भासित करता है कि उस नगर-राज्य में शासन-शक्ति नगर-देवी में अंतर्भूत थी। पंजाब के जनपदीय राज्य-औदुम्बर, कुणिन्द और यौधेय, जो नगर-राज्यों के प्रायः समकालिक थे, इसी प्रकार के थे। उन्होंने अपने इष्ट-देवों-महादेव (शिव), चत्रेश्वर (शिव) और ब्रह्मण्य (कार्तिकेय) के नाम पर सिक्के प्रचलित किये थे। इस प्रकार ई.पू. दूसरी शती में सिक्के प्रचलित करने वाले राज्य आग्नेय, राजन्य, शिवि, त्रिगत और यौधेय ज्ञात होते हैं। इनमें यौधेय का अस्तित्व तो गुप्त साम्राज्य के उदय तक रहा। ई.पू. दूसरी शती के जनराज्यों के अपने को अपने सिक्कों पर जनपद नाम से अभिहित किया है। उनका नाम सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि में लिखा मिलता है। कुछ जनपदों ने अपने नाम के साथ अपने स्थान का भी उल्लेख किया है। परवर्ती जनराज्यों में अनेक राज्यों के सिक्के ऐसे हैं जिन पर जन-नाम के साथ-साथ राजा अथवा महाराजा उपाधि से युक्त वैयक्तिक नामों का उल्लेख हुआ है। प्रत्येक जन-राज्य के सिक्कों का अपना-अपना भार-मान था और कइयों ने खरीज के रूप में एक से अधिक मूल्य के सिक्के चलाये थे। कुछ जनराज्यों के सिक्के चाँदी के भी थे, किंतु वे अब दुर्लभ हैं। चाँदी के सिक्के यवन-राजाओं के हेमी-दुरुम सिक्कों के भार-मान के हैं और उनकी बनावट भी उनके सिक्के से मिलती-जुलती हुई है। यौधेयों के परवर्तीकालीन

सिक्के सुडौल बनावट के हैं और उन पर कुषाण प्रभाव परिलक्षित होता है। इस काल में गंगा-यमुना के कांटे में राज-तंत्र का विकास हुआ। वहाँ उनके सिक्कों से चार बड़े राज्यों के होने का पता लगता है। इनमें एक तो शूरसेन था, जिसकी राजधानी मथुरा थी, दूसरा पांचाल था, उसकी राजधानी अहिच्छत्र (रामनगर, जिला बरेली) थी, तीसरा वत्स था। उसकी राजधानी कौशाम्बी थी और चौथा कोसल था उसकी राजधानी या तो श्रावस्ती (सहेत-महेत, जिला गोंडा) रही होगी या फिर साकेत (अयोध्या, जिला फैजाबाद)। शूरसेन (मथुरा) के राज्य पर पहले शक क्षत्रपों ने अधिकार किया। बाद में उस पर कुषाणों का आधिपत्य हुआ। विदेशी राजाओं में रजुबुल पहला राजा था। पहले वह पंजाब के कुछ भाग पर शासन करता था। उसके अद्यतन सिक्के हेमीद्रख्य भारमान के हैं और उनकी चाँदी में काफी मात्रा में सीसे की मिलावट है। देखने में वे वाख्त्री-भारतीय नरेश स्ट्रेटो (प्रथम एवं द्वितीय) के उत्तरकालीन सिक्कों से बहुत कुछ मिलते हुए हैं। इन पर एक ओर राजा को दक्षिणाभिमुख छवि और भ्रष्ट यावनी भाषा में नाम के साथ बेसीलियास बेसीलियास सोटोरास विरुद हैं। रजुबुलके बाद उसके दो षोडश और तोरणदास शासक बने, पश्चात् कुछ काल तक हगान और हगामश ने संयुक्त रूप से शासन किया। फिर हगामश अकेले शासक रहा। उनके बाद शिवदत्त और शिवघोष नामक दो अन्य शासक हुए। रजुबुल और षोडश के सिक्कों पर उन्हें महाक्षत्रप कहा गया है।

पांचाल के सिक्कों में अविच्छिन्न एकरूपता देखने में आती हैं और उनसे वहाँ के इक्कीस राजाओं के नाम ज्ञात होते हैं। वे हैं- रुद्रगुप्त, जयगुप्त, दामगुप्त, वंगपाल, विश्वपाल, यज्ञपाल, वसुसेन, सूर्यमित्र, विष्णुमित्र, ध्रुवमित्र, इन्द्रमित्र, फाल्गुनीमित्र, बृहस्पतिमित्र, अणुमित्र, वरुणमित्र और प्रजापति मित्र। सूर्यमित्र और भानुमित्र के सिक्कों पर एक जगती पीठ पर सूर्य का प्रतीक रखा है। इसी प्रकार अग्निमित्र के सिक्के पर जो मानव आकृति है, अच्युत नाम शासक के सिक्के भी मिले हैं, जिसका उल्लेख प्रयाग-प्रशस्ति में हुआ है। विदिशा-एरण के ताम्र आहत मुद्राओं की, जो कदाचित् शुंग और कण्व राजाओं के हैं। उनके बाद सात ओर सातकर्णी नामक दो सातवाहन राजाओं के अभिलेखयुक्त सिक्के मिलते हैं। सातवाहनों के पश्चात् इस प्रदेश में पश्चिमी क्षत्रप आये। उनका परिचय उनके अपने सिक्कों से ही मिलता है।

उज्जयिनी से मिलने वाले अभिलेखहीन टंकित सिक्कों की लम्बी श्रृंखला मिली है। जिन पर हमुगम, वल्मक, महू, सौम आदि नाम पढ़े गये हैं। ये नाम शक सरीखे लगते हैं और जैन-साहित्य में उल्लेखित उस अनुश्रुति का समर्थन करते हैं, जिसमें ई.पू. पहली शती में शक आक्रमण की बात कही गयी है। इन सिक्कों पर एक ओर नाम और दूसरी ओर उज्जयिनी के सिक्कों से गृहित प्रतीक है। महाकोसल वाले क्षेत्र में त्रिपुरी और महनार से मित्र, माघ, बाधि और सेन वंश के सिक्के प्रकाश में आये हैं। बोधि और सेन वंश के सिक्क सीसे के हैं।

दक्षिण भारत की संस्कृति और चोल शासक

प्रदीप जैन

चोल शासक धार्मिक सहिष्णु, उदार, विद्यानुरागी तथा कलाप्रेमी थे। वे स्वयं शिवोपासक थे। किन्तु जैन तथा बौद्ध दोनों धर्मों के उन्नयन में उनका योगदान रहा। राजराज प्रथम के शासनकाल (985–1014 ई.) में तमिल के शैवधर्म ग्रन्थों को संकलित किया गया। इसी प्रकार नाथमुनि ने वैष्णव धर्म को प्रतिष्ठित किया। उनके पुत्र प्रसिद्ध शिरोमणिय (आलवंदार) हुए। चोलयुगीन धार्मिक स्थिति के उन्नायक यामुनाचार्य के अनुज रामानुजाचार्य का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान है। वे विशिष्टाद्वैतवादी वैष्णव दार्शनिक थे, किन्तु उन्होंने मन्दिरों की परम्परागत पूजा विधि में नया सुधारकर यह व्यवस्था की कि वर्ष में एक दिन मन्दिरों को अन्त्यजों के प्रवेश के लिए खोल दिया जाय। रामानुज के इस धार्मिक औदार्य का प्रभाव दक्षिण से उत्तर तक प्रसारित हुआ और उसकी परम्परा निरन्तर प्रशास्त होती रही। चोलों के शासनकाल में वैष्णव शैव जैन और बौद्ध धर्मों के अतिरिक्त पाशुपत, कापालिक, कालमुख या कौलिक जैसे वाममार्गी तान्त्रिक सम्प्रदायों का भी अस्तित्व बना रहा। इन सम्प्रदायों ने विकृत एवं निकृष्ट उपासना पद्धतियों का प्रचलन किया।

चोल शासकों ने मन्दिरों के निर्माण में विशेष अभिरुचि प्रदर्शित की। चोल शासकों को भवन निर्माण और मूर्ति-मन्दिर निर्माण का अद्भुत शौक था। उनके द्वारा निर्मित मन्दिरों में सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं प्रभावोत्पादक राजराज प्रथम द्वारा तज्ज और में निर्मित राजराजेश्वर का मन्दिर है। अपनी ऊँचाई एवं विशालता की दृष्टि से उसका विशेष महत्व है। उसकी नित्तियों पर अंकित चित्र बड़े महत्व के हैं। इस रूप में यह मन्दिर स्थापत्य, मूर्ति और चित्रकला के इन त्रिविध रूपों का सहज ही संगम बन गया है। इसी प्रकार राजेन्द्र प्रथम ने गंगैकोण्डचोलपुरम (त्रिचनापल्ली) में गंगैकोण्डचोलेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया। यह मन्दिर भी अपनी विशालता एवं मूर्ति-निर्माण की दृष्टि से उल्लेखनीय है। मन्दिरों के अतिरिक्त मूर्तियों के निर्माण में चोल युग का विशेष महत्व है। अजन्ता, बादामी एलोरा और एलीफैण्टा के निर्माण तथा पुनरुद्धार और यहाँ के स्थापत्य, मूर्तियों तथा



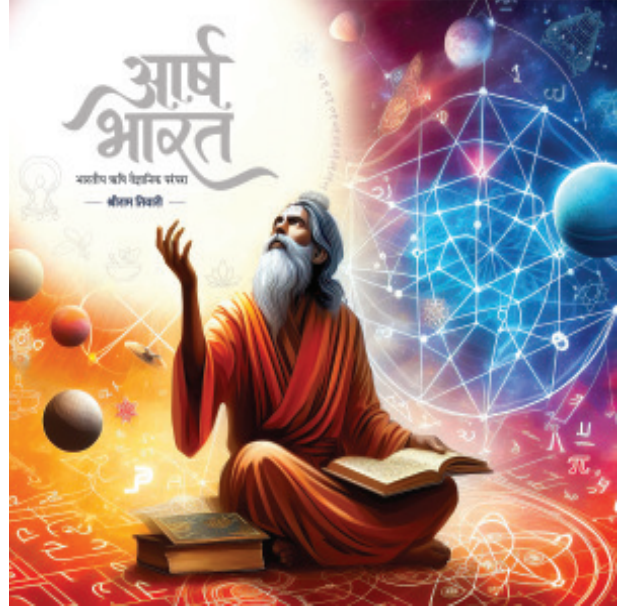
चित्रों के उत्थान में चोलों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस युग में पाषाण और धातु दोनों प्रकार की बहुमूल्य कलात्मक मूर्तियों का निर्माण हुआ। इस युग की कास्य प्रतिमाएँ अपनी सुन्दरता के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनमें नटराज की मूर्तियों सर्वोत्कृष्ट है। नटराज की नृत्य-मूर्तियों के निर्माण में चोल राजाओं का शासनकाल स्वर्णयुग रहा है। इस युग में निर्मित विदम्बरम् का नाम उल्लेखनीय है। इस विशाल एवं भव्य मन्दिर में नटराज के 108 नृत्यों का अंकन हुआ है। चोल शासकों के समय कास्य मूर्तियों का व्यापक रूप से निर्माण हुआ। इस प्रकार की लगभग 294 कास्य मूर्तियों का एक वृहत् संग्रह नागपट्टनम् से प्राप्त हुआ है, जो कि मद्रास संग्रहालय में सुरक्षित हैं। यह नागपट्टनम् दक्षिण भारत के पूर्वीय सागर तट पर एक बन्दरगाह था जिसका उल्लेख सोमेश्वर भूपति के मानसोल्लास आदि ग्रन्थों में हुआ है। इस संग्रह में नटराज तथा अन्य ब्राह्मण देवी-देवताओं की मूर्तियों के अतिरिक्त बुद्ध, मैत्रेय, अवलोकितेश्वर मंजुश्री और तारा आदि बौद्धधर्म से सम्बद्ध मूर्तियों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस युग में निर्मित

के विभिन्न रूपों, ब्रह्मा, विष्णु, कृष्ण, राम, सीता। सप्तमातृकाएँ, लक्ष्मी और भू-देवी की अनेक भव्य मूर्तियों का निर्माण हुआ। यह परम्परा लगभग 17वीं शती तक बनी रही। चोलयुगीन ये मन्दिर धर्म प्रतिष्ठान, कलाकेन्द्र और ज्ञानकेन्द्र थे। उनमें अनेक उच्च विषयों की शिक्षा दी जाती थी। उन्होंने संस्कृत अध्यापन के लिए ब्रह्मपुरी तथा घटिका नाम से विद्यालयों की स्थापना की थी। चोल स्वयं संस्कृतज्ञ थे। त्योहारों और उत्सवों के समय वहाँ नाट्य-गान आदि मनोरंजन के भी आयोजन हुआ करते थे। अनेक शिल्पियों एवं कलाकारों के वे आजीविका के केन्द्र थे। उनका शिल्प विशेष रूप से प्रशंसनीय है। उनके विमानों, स्तम्भों, प्रांगणों और गोपुरों की रचना विधि सर्वथा अपूर्व एवं अनुपम है। चोल युग तमिल-साहित्य के निर्माण का स्वर्णयुग माना जाता है। संस्कृत की भी अनेक महत्वपूर्ण कृतियों इस युग में निर्मित हुईं। दर्शन, पुराण और प्रबन्ध आदि अनेक विषयों की बहुसंख्य कृतियों का निर्माण होकर चोलों के शासन की कीर्ति युग-युगांतर के लिए अमर बनी।

पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

वैज्ञानिक चिंतन की प्राचीन परंपरा 'आर्ष भारत'

भारत में वैज्ञानिक अध्ययन, चिंतन की अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध परंपरा रही है। प्राचीनकाल से ही हमारे देश में विज्ञान के क्षेत्र में भी असाधारण शोध-कार्य हुए हैं। भारतीय मनीषियों ने विज्ञान के विविध क्षेत्रों में गहन अनुसंधान किया है। भारतीय प्राचीन ऋषियों की परंपरा को जानने के इस प्रयास में हम पाते हैं कि पश्चिम सहित पूरी दुनिया आज तक जिन वैज्ञानिक अन्वेषणों व आविष्कारों को अपने द्वारा अन्वेषित करने का दावा करती रही है, वह दरअसल सदियों पहले प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियों के तप का अन्वेषण है। यह वही ज्ञान परंपरा है जिसने कालांतर में आधुनिक विज्ञान के लिए नयी राह प्रशस्त की पश्चिम परस्त आधुनिक इतिहासकारों ने हमेशा ही इसको प्रश्नांकित किया तथा इसके अस्तित्व को नकारा, आधुनिक इतिहासकार विशेष रूप से वैदिक युग को चिन्हित करने में लगभग असफल रहे हैं। भौतिक, रसायन, वनस्पति, चिकित्सा, गणित, खगोल, ज्योतिष, ऊर्जा, संचार, दर्शन व योग सहित अनेक अनेक क्षेत्रों में वैदिक युगीन ऋषियों ने जो अन्वेषित किया था उसको दुनिया के आधुनिक विज्ञान समाज ने स्वीकार करना आरंभ किया है। विश्व की सबसे प्राचीन भारतीय सनातन परंपरा को जिन ऋषि, महा आचार्य व असंख्य मेधावान महापुरुषों ने अपनी साधना, तप, ध्यान व उससे अर्जित ज्ञान से पल्लवित किया वह अद्वितीय है। सनातन की यह शाश्वत परंपरा जिसका न कोई आदि है और न अन्त तथा इसमें शामिल ज्ञान की अविचल धारा ने उत्तरोत्तर संपूर्ण विश्व को नयी दिशाएँ प्रदान की हैं। जैसा कि विदित है ज्ञान को भारत में प्राचीन समय से ही सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है, प्राचीन काल से लेकर आज के आधुनिक समय तक ऐसे असंख्य क्षेत्र हैं जिनमें इसी भारतीय ज्ञान परंपरा से कई नवीन प्रतिमान स्थापित हुए हैं। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित वैज्ञानिक सूत्र बहुत ही सहज और सारगर्भित रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। उस काल में जहाँ जन सामान्य जीवन को बेहतर बनाने के लिए शास्त्र लिखे गये तो विज्ञान और गणित के रहस्यों के जवाब देने के लिए भी शास्त्र लिखे गये। आधुनिक भारतीय जनसमाज के मन मस्तिष्क में कहीं ना कहीं यह बात मौजूद है कि बहुतायत में वैज्ञानिक आविष्कार पश्चिमी देशों की देन है उनके लिए यह जानना आवश्यक है कि पश्चिम के अधिकांश वैज्ञानिकों तथा आविष्कारकों ने भारतीय वैदिक विज्ञान की महत्ता को स्वीकार किया है। पश्चिम के राइट बंधुओं से हजारों वर्ष पूर्व महर्षि भारद्वाज ने विमान की कल्पना करते हुए वैमानिकी शास्त्र रचा जो आज के संदर्भों में भी सामयिक है। आधुनिक विज्ञान में जॉन डॉल्टन के परमाणुवाद का योगदान माना जाता है। परंतु भारत के महान



पुस्तक- आर्ष भारत

लेखक- श्रीराम तिवारी

प्रकाशक- महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

परमाणुशास्त्री महर्षि कणाद ने सर्वप्रथम परमाणु तत्व पर सूक्ष्म विचार था। वैदिक युग में सुश्रुत जैसे ऋषि चिकित्सक सफल शल्य चिकित्सा करते थे और आधुनिक विज्ञान ने इसको कुछ सदी पहले ही पुनः आविष्कृत किया। न्यूटन से कई सदियों पहले भारत के खगोल विज्ञानी भास्कराचार्य ने यह प्रतिपादित कर दिया था कि पृथ्वी आकाशी पदार्थों को एक विशेष शक्ति से अपनी तरफ आकर्षित करती है। उन्होंने ही गणितीय गणना में शून्य को प्रतिपादित किया था। ऋषियों का मत रहा है की विज्ञान और अध्यात्म एक दूसरे के पूरक है। इन दोनों के समन्वय से ही जीवन का पर्दुभाव होता है। यही कारण है की वेद उपनिषद् दर्शन सभी में विज्ञान और तकनीकी सोच का विवरण मिलता है। हम इस बात पर निश्चित हो सकते हैं कि आज विज्ञान और अनेक विषयों के सम्बंध में जो कुछ भी ज्ञात है, उसमें भारत ने एक केंद्रीय भूमिका निभाई है और हमारी सभ्यता ने यूरोप में ज्ञात होने से कई सहस्राब्दी पहले इन अवधारणाओं की खोज की थी। महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ द्वारा प्रकाशित ग्रंथ "आर्ष भारत" का मूल उद्देश्य हमारी प्राचीन भारतीय ऋषि वैज्ञानिक परंपरा से जनमानस विशेष रूप से युवा पीढ़ी को अवगत करना है। भारत के ऋषियों का मानव कल्याण में अपना विशिष्ट योगदान है।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा नि:शुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujain@gmail.com, vikramadityashodhpeth@gmail.com